International Journal of Enhanced Research in Educational Development, ISSN: 2320-8708
Vol. 1 Issue 7, Nov.-Dec., 2013, pp: (19-23), Available online at: www.erpublications.com

रामकृष्ण परमहंस के कर्म, भक्ति और ज्ञान का विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रियंका कुमारी

शोधार्थी, इतिहास विभाग, ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश

रामककृष्ण परमहंस हिन्दू धर्म क सभी रूपों का अनुभव प्राप्त करने के बाद उन्होंने 'अपना जाल और दूर तक फैलाना शुरू किया सबसे पहले वे इस्लाम की ओर मुड़े। यद्यपि यह इस्लामी दौर बहुत अल्पकालीन था, फिर भी यह स्पष्ट है कि रामकृष्ण परमहंस ने सूफी चिनतन के वातावरण को पूरी तरह आत्सात कर लिया था। उनके बहत–से रूपक 'अल–गजलाली और जलालुद्दीन रूमी' की याद दिलाते हैं। कुछ वर्षो के बाद वे इसाई धर्म की ओर आकर्षित हुए। बाइबिल उन्हें शंभुचरण मालिक तथा अन्य प्रमुख ईसाइयों ने पढ़कर सुनाई। उन्हें जीसस के दर्शन होने लगे और मैडोना तथा शिशु जिसस के एक चित्र को देखकर रहस्यवादी विह्वलता से आक्रांत हो गये। परवर्ती वर्षों में रामकृष्ण प्रायः ईसा के बारे में कहा करते थे कि 'वे एक महान योगी थे जिन्होंने मानवता की भलाई के लिए अपने हृदय का रक्त उँड़ेला। मात्र बौद्ध धर्म ही ऐसा महान संस्थापरक धर्म था जिससे रामकृष्ण परमहंस का घनिष्ठ सक्रिय संपर्क नहीं हुआ। फिर भी उनपर बौद्ध प्रभाव नगण्य नहीं था, विशेषकर विवेकानंद के साथ घनिष्ठ सहयोग होने के बाद जो अक्सर बुद्ध की चर्चा किया करते थे। लगता है कि ऐसे विषयों में अपनी विलक्षण अंतर्दृष्टि से रामकुष्ण परमहंस शीघ्र ही यह समझ गये थे कि अपने उच्चतम स्तर पर बौद्ध धर्म और वेदांत मिल जाते हैं। स्मरण रहे कि भारत के अन्य भागों की भाँति बंगाल में बौद्ध धर्म की परम्परा पूरी तरह कभी लुप्त नहीं हुई। बंगाल की लोकवार्ताओं और तंत्रा में बहुत–सा बोद्धधर्म जीवित रहा। रामकृष्ण की सहजवृत्ति ने अब उन्हें सामाजिक यथार्थ की ओर ध्यान देने को प्रेरित किया। उन्होंने समकालीन सूधार आंदोलनों को समझने का प्रयत्न किया। अस्पताल–निर्माताओं और स्कूल–संस्थापकों के बारे में उनके उल्लेख प्रायः व्यंग्यपूर्ण हुआ करते थे। उन्होंने दूर–दूर तक भ्रमण किया और अपनी यात्राओं से समस्त मानव–जाति के अनुभव के साथ तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास कियां 'इसके बहुत से चमत्कारी उदाहरणों का उल्लेख उनकी मथुरा, बनारस तथा अन्य तीर्थ–स्थानों की यात्राा के सिलसिले में हुआ है। जहाँ भी वे जाते वहाँ दरिद्रता और अभाव को देखकर बहुत द्रवित होते थे।

मूल शब्दः–*हिन्दू–धर्म, इस्लाम, अल्पकालीन, अंतदृष्टि, विलक्षण, बोद्धधर्म, निर्माताओं, आंदोलन* ।

प्रस्तावना

रामकृष्ण परमहंस का जन्म, जिनका असली नाम गदाधर था, 18 फरवरी 1836 को, समीपतम रेलवे स्टेशन से पच्चीस मील दूर, हुगली जिले के ऐ छोटे–से गाँव कमरपुकुर में हुआ था। वे गाँव के पुरोहित खुदीराम चटर्जी के पुत्रा थे। बचपन से ही रामकृष्ण में रहस्यवादी दर्शन की प्रवृति थी और सबसे पहला दर्शन उन्होंने छः वर्ष की आयु में किया था। उनमें सौन्दर्य–बोध असाधारण रूप से प्रबल था और उन्हे मिट्टी की प्रतिमा रंगने में विशेष आनंद आता था। स्कुल में पढ़ने से उन्हें चिढ़ थी और भटकते हुए साधु–संतों की संगति में घंटों बिता देते थे। उनका अधिकांश समय गीत रचने या पुराणों की कथाएँ सुनाने मोबीतता था किन्तु बचपन की सबसे महत्वपूर्ण बात थी रहस्यवादी दर्शनों के समय उनकी तीव्रभाव–विह्वलता।

उनकी आत्मा अब बाह्य, अनतर और उर्ध्व तीनों दिशाओ में संचरण कर चुकी थी। उनका विकास पूर्ण हो चुका था। उन्होंने जगत की एक–एक पर्त प्याज के छिलकों की भाँति उतारकर देख लीय थी। और जो कुछ उन्होंने सीखा था उन्हें अवलोकन और अन्तः प्रज्ञा से प्राप्त हुआ था। अपनी इस कठोर और व्यापक

प्रशिक्षणावस्था को पूरा करने के बाद, हुआ था। रामकृष्ण परमहंस अपने विचारों तथा अनुभवों की चर्चा करने में बिताने लगे। अपने मित्रों और चिकित्सकों द्वारा सावधान करने के बावजूद वे निरंतर बोलते रहे, यहाँ तक कि उनके कंठमें तीव्रव्याधि उत्पन्न हो गयी। उनका निधन 15 अगस्त 1886 को हुआ।

रामकृष्ण परमहंस के व्यक्तित्व में पर्सपर–विरोधी विशेषताओं और रूचियों का अपूर्व समन्वय था। अस्तित्व की गहनतम समस्याओं में उलझे होने पर भी, सत्य के गंभीर संगीत के साथ स्वरबद्ध होकर भी, उनमें शिशुवत भोलापन था। यह भोलापन उस उन्मुक्त आनन्द में देखा जा सकता है।

रामकृष्ण परमहंस को 'उक्तियाँ जीवन की पुस्तक के पृष्ठ हैं।' यह वाक्य रामकृष्ण के चिन्तन के मूलतः व्यावहारिक स्वरूप, व्यक्तिगत सिद्धि से उनके घनिष्ठ सम्बन्ध प्रस्तुत करता है। बौद्धिक जानकारी से व्यक्तिगत सिद्धि की श्रेष्ठता कई–एक नीति कथाओं में दिखाई गई हैं। उनमें से तीन का यहाँ उल्लेख किया गया है 'सबसे पहले तो नदी पार करते हुए एक पंडित और मल्लाह की भाँति हैं पंडित ने मल्लाह से पूछा कि क्या तुम वेदांत, सांख्य, मीमांसा जानते हो ? मल्लाह ने हर बार 'नहीं' कहा किन्तु कुछ ही देर बाद नदी में बड़े जोर का तूफान आ गया। तब मल्लाह ने घबराये हुए पंउित से पूछा, 'श्रीमान' मैं वेदांत, सांख्य या मीमांसा तो नहीं जातना, पर मैं तैरना जानता हूँ।' एक अन्य अवसर पर रामकृष्ण ने शुद्ध सिद्धांतवादी की तुलना उस व्यक्ति से की जो 'बाग में जाकर आम खाने की बजाय पेड़, की शाखाएँ और हर शाखा में पत्तियों की गिनती में उलझाा रहता है।' ऐसे ही गिद्दों की कथा भी है। गिद्द चाहे जितने ऊपर उड़ जाएँ, उनकी लोलूप दृष्टि धरती पर पड़े शव पर ही लगी रहती है। इसी प्रकार 'विद्वान और पंडित बुद्धि के पंखों के सहारे चाहे जितनी उड़ाने भरते रहें, उनके मन निरर्थक वस्तुओं से जकड़े रहते हैं। यहाँ गिद्द का रूपक सच्चे और झूठ त्याग का भेद समझने के लिए भी किया गया है।

रामकृष्ण यह कहते कभी नही थकते कि मतमतान्तर केवल मार्ग भर है, वे नदियों के समान हैं जो अलग–अलग स्थानों में बहती हुई अंत में एक ही महासागर में विलीन हो जाती हैं एक ही सत्य को ग्रहणकर्त्ता के मन की प्रकृति और आवश्यकताओं के अनुसार विभिन्न तरीकों से सुलझाया जा सकता है। माँ अपने बच्चों के लिए उनके हाजमें के हिसाब से अलग–अलग ढेग से मछली पका सकती है–'तलकर, उबालकर,या रामकृष्ण के ही एक अन्य प्रियरूपक द्वारा कहें तो, 'सत्य की तुलना एक निर्मल जलाशय से की जा सकती है। जलाशय के एक ओर हिन्दू अपने घड़े मे जल भरता है, दूसरी ओर मुस्लमान उसे पानी कहता है और तीसरी ओर साहब उसे वाटर कहता हैं पर जलाशय में भरा हुआ पदार्थ वही रहता हैं, पर यह सहिष्णुता सर्वथा असम्बद्ध विचारों को स्वीकार कर लेने और सर्वथा असमन्वित रखने के स्तर पर नहीं है, होनी चाहिए। सहिष्णु दृष्टिकोण का विकसित होकर समन्वित दृष्टिकोण होना आवश्यक हैं रामकृष्ण समझते थे कि केवल मान लेना भी यथेष्ट नहीं है, परस्पर–सामंजस्य उत्पनन करना भी आवश्यक है। उनके समन्वयकारी के ऐतिहासिक रूप का उल्लेख करते हुए विवेकानन्द ने लिखा है, कि कोई ऐसा व्यक्ति जन्म ले जिसके एक ही शरीर में शंकर की विलक्षण प्रखर बृद्धि हो और चेतन्य का अद्भुत, डार, असीम हृदय भी, जो प्रत्येक सम्प्रदाय के भीतर एक ही भावना, एक ही ईश्वर को कार्यशील देख सके, जिसका हृदय गरीब दुर्बल और निर्वासित के लिए–भारत में या भारत से बाहर प्रत्येक व्यक्ति के लिए–हो सके और साथ ही जिसका विशाल और प्रखर मस्तिष्क ऐसे विचारों की अवधारणा में समर्थ हो जो सभी विरोधी संप्रदायों में समन्वय पैदा कर सके,

विवेकानन्द के इन शब्दों से यह स्पष्ट है कि रामकृष्ण केवल इस सीमित अर्थ में ही समन्वयकारी नहीं थे कि अपनी विश्वदृष्टि में उन्होंने विभिन्न विचारों को स्थान दिया था, बल्कि वे इस व्यापक अर्थ में भी समव्यकारी थे कि मानव स्वभाव के विभिन्न पक्षों और परस्पर भिन्न परंपराओं के अधिकारों को मान्यता देते थे। यह सामंजस्य बौद्धिक नहीं आध्यात्मिक था, बल्कि किसी हद तक सौन्दर्यमूल्क था।

रामकृष्ण मानते थे कि साधु जीवन के मूलभूत सिद्धांत हैं विनय, आत्मज्ञान, अनुशासन और सांसारिक स्वार्थ की संकुचित सीमाओं से ऊपर उठने की क्षमता। विनय का महत्व तुला के रूपक द्वारा स्पष्ट होता है–'हलका पलड़ा ऊपर उठ जाता है और भारी पलड़ा विनय से नीचे झुठ जाता है। आत्माज्ञान के लिए रामकृष्ण अपने अनुयायियों को दृष्टि की अन्तर्मुखी करने का ओदेश देते थे जिससे न केवल आनी सीमाएँ बल्कि अपनी प्रसुप्त अज्ञात क्षमाताएँ भी पहचानी जा सकें। इस संबंध में वे प्रायः उस आदमी की कथा सुनाया करते थे 'जो आधी रात को दूसरे के दरवाजे हुक्का सुलगाने के लिए दिया सलाइई माँगने पहुँचा, पर सारा समय उसके हाथ में एक लालटेन थी जिससे वह आसनी से आग सुझा सकता था।

यद्यपि रामकृष्ण निवृत्ति के अतिरिक्त को नापसंद करते थे, फि भी उनका आग्रह था कि नैतिक प्रगति के लिए त्याग आवश्यक हैं यह सही है कि त्याग करने की सीमा सत्य के खाजी व्यक्ति की विशेष स्थिति पर निर्भर करेगी। पर सांसारिक मोह सेऊपर उठ सकने की तत्परता पहली शर्त है। शुद्ध लेकिनझमेलों में उलझे रहने वाले मन की तुलना रामकृष्ण ऐसी दिया सलाई की डिबिया से करते थे जो बहुत दिनों से किसी सालन से भरी जगह में रखी हो। ऐसी डिबिया से चाहे सौ तिलियाँ घिसिए, उनसे कोई आग नहीं जलेगी। या अन्य दृष्टान्त लें तो मानव–मन मिट्टी लिपटी हुई के समान है। यदि सूई को चुम्बक–चरम–सत्ता की ओर आकर्षित करता है तो मिट्टी की पर्ते–लोभ, विलासप्रिय–पहल सावधानीसे खुरच डालनी होगी।

इस संदर्भ में नीतिकथाओं का उल्लेख किया जा सकता है। 'एक मदुहारिन को मछली की गंध की ऐसी आदत पड़ गई थी कि अपनी टोकरी बिना उसे नींद नहीं आती थी। एक बार वह अपनी सहेली के यहाँ गई जिसने उसके सत्कार में उसके बिस्तर के सिरहाने सुगंठित फूलों का एक गुच्छा दखवा दिया। मछुहारिन रात–भर बेचैन रही। फूलों की गंध से उसकी नींद में बाधा पड़ी और वह सारा समय अपनी मछली की टोकरी के लिए तरसती रही। इसी प्रकार नश्वर मूल्य की वस्तुओं से अधिक लगाव हो जाने पर व्यक्ति उनके बिना नहीं रह पाता और जब बेहतर चीजों से उसका सामना होता है तो वह बहुत परेशान हो जाता है। इसी तरह रेशम के कीड़ों की नीति कथा है 'जो बडे प्यार और असीम यत्न से अपना रेशम कोष बनाता हैं रेशम कोष बड़ा सुन्दर होता है, पर रेशम की कीड़ा उसमें से निकल नहीं सकता और अंत में उसी में मर जाता हैं पदार्थो का जगत भी एक सुन्दर रेशम कोष की भाँति है। हम बड़े प्यार से उसे रचकर अपने को उसके भीतर बन्दी कर लेते है और यह मूल जाते हैं कि बाहर उससे भी सुन्दर वस्तुएँ।

रामकृष्ण का आग्रह है कि संसार में रहों, पर ध्यान उसका कटो जो संसार से ऊपर है। 'कछुवे को देखो' वह पानी में रहता है, पर उसकामन किनारे पर लगा रहता है जहाँ उसके अंडे जमा रहते है। ससीमता से ऊपर उठने के लिए विवेक चाहिए और विवेक के लिए अनुशासन जरूरी है। संसार पानी की भाँति है और आत्मा दूध की भाँति। दोनों मिल जाएँ तो पहले–पहल तो शुद्ध दूध को फिर से प्राप्त कर सकना असंभव जान पड़ता है। पर यदि मिश्रण की दही बनाकर उसे अच्छी तरह मथ डाला जाए तो मक्खन ऊपर तैर आता हैं आत्मा के अनुशासन द्वारा हम ज्ञान की नवीनता प्राप्त कर सकते हैं। वह ऊपर तैर आएगा। रामकृष्ण कहते है।, 'चींटी की तरह जियो। वह चीनी और बालू का अंतर पहचानती हैं। संसान में सत्य और असत्य दोनों है। उनके बीच भेद करना सीखों। हंस की तरह रहों जो दूध और पानी को अलग कर सकता है। जलमुर्गाबी की तरह रहो'अपने पंखों पर पड़े पानी को झटक कर गिरा दो और ऊपर उड़ चलो। कीचड़ की जैसे बनो, कीचड़ में रहने पर भी उसकी क्षास चमकीली और उजली होती है।

रामकृष्ण कर्म, भक्ति और ज्ञान के आपेक्षिक मूल्य का विश्लेष्ण कदाचित ही करते हैं। उनका दुश्टिकोण इतना लचीला और एकतामूलक था कि उसमें इस प्रकार महत्व के बँटवारे को गुंजाइश नहीं थी। पर इसका यह अर्थ नहीं कि उनकी अपनी कोई पसंद नहीं थी। कर्म–प्रधान पद्धति की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए भी रामकृष्ण निश्चित रूप से उसे एक साधन–भर मानते थे। उनका आग्रह निरंतर इस बात पर रहता था कि वास्तविक लक्ष्य ईश्वर–प्राप्ति है। कर्म चाहे जिना निःस्वार्थ हो, सदा साध नही रहता है, कभी लक्ष्य नहीं बन सकता। बाद में रामकृष्ण के अनुयायियों ने सामाजिक कर्म की बड़ी सुदृढ़ परंपराएँ स्थापित की और कर्त्तव्य पर उतना ही बल दिया जितना ध्यान पर। पर यह स्मरण रखना चाहिए कि यह विवेकानन्द द्वारा गुरू की शिक्षाओं में अपनी गतिमान क्रियाशिलता का समावेश कर देने के बाद ही संभव हुआ।

सच्ची भक्ति से रामकृष्ण दो बातें चाहते हैं एक तो वह एकाग्र होनी चाएि। वह आकाश में सीधे बढ़े जाने वाले पेड़ के अकेले सीधे तने की भाँति होनी चाहिए, धरती के पास ही बहुत सी शाखाओं में बँटे हुए पेड़ की भाँति नहीं। दूसरे, भक्ति के साथ आंतिरक दृढ़ता अवश्य होनी चाहिए जिससे वह हमारी अधोगामी वृत्तियों के खिंचाव को वश में रख सके। हल्की सी आग को छोटी –सी लकड़ी भी बुझा सकती है, पर ज्वलंत अग्नि में बड़े–बड़े वृक्षों को रख कर देने की क्षमता हैं भक्ति में दृढ़आस्था होने पर भी रामकृष्ण को यह भ्रम नहीं था कि निजी ईश्वर की भक्ति द्वारा अपने अतीत को पूरी तरह मिटाया जा सकता है। यह आशा दिलाना भ्रामक होगा कि भक्ति का कवच पहन कर निम्न–से–निम्न स्तर पर बेखटके उरता जा सकता हैं एक हद तक हमारे कर्म बड़े निष्ठुर हैं, वे अपने परिणामों का पत्यिाग नहीं करते। 'मदिरों के घाट को गंगाजल भी पवित्रा नहीं कर सकता अथवा जैसा उन्होंने एक अन्य रूप कहा है, अन्धा आदमी गहरी भक्ति से गंगा मं स्नान करे तो अपने कुछेक पापों से भले ही मुक्त हो जाए पर अंधा वह फिर भी रहता ही है।

ज्ञान के प्रश्न पर भी रामकृष्ण तैयारी और भले–बुरे के विवेक पर बल देते है। अफलातून द्वारा विचार और सत्य के अंतर को याद दिलाने वाले शब्दों में रामकृष्ण इस बात का आग्रह करते हैं कि ज्ञान के लक्ष्य को अधिकत्म मूल्यवान होना चाहिएं मामूली मक्खी भले ही हर चीज पर बैठ जाये, पर मधुमक्खी केवल फूल पर ही उतरती है। कौआ चाहे जहाँ पानी पी ले, पर घातक धैर्यपूर्वक स्वाति–बूँद की ही प्रतीक्षा करता है। ज्ञान भी सीढ़ी–दर–सीढ़ी आना चाहिए। विद्वता के शिखर पर चढ़ने का साहस करने के पहले कुछ अल्पमत विकास आवश्यक है। नये शहर में पहुँचने वाला मनुष्य पहले अपने सामान रखने के लिए कहीं कोई कमरा तलाश करता हैं इसके बाद उसे चाहे जहाँ भटकने की छूट है। इसी प्रकार ज्ञानार्थी की चह आवश्यक है कि वह बौद्धिकसाहसिकता की खोज में अपरिचित प्रदेशों में भटकने के पहले अपने मन को एक निश्चित पूर्व–परिचित रास्ते पर प्रशिक्षित करके मूलभूत आधार को पक्का कर ले। प्रारंभिक अवस्थाओं में मन को अत्यधिक स्वच्छंदता से बचाना वेसा ही आवश्यक है जैसा किसी नन्हें पौधे को आवारा पशुओं से बचाने के लिए उसके चारों ओर बाड़ लगाकर उसे अलग कर देना आवश्यक होता है। पर मन को आवश्यकता से अधिक सुरक्षा भी नहीं मिलनी चाहिए। उसका कठोर मार्ग से सीखना और बढना आवश्यक है। उसे दृढ़ होना चाहिए जैसे धन की चोटों से निहाई अप्रभावित और दृढ रहती है।

श्रामकृष्ण परमहंस के विचार अवश्य ही अवयवस्थित और अनिश्चित होने पर भी हमें उनमें कुछ दार्शनिक दृष्टिकोणों और मान्यताओं का समर्थन मिलता हैं इस सबके बावजूद रामकृष्ण के सबसे तीव्र और प्रभावशाली कथन वे ही है जिनमें उनका रहस्यवादी रूप प्रकट होता है। तभी उनके रूप को और नीतिकथाओं में ऐसी काव्यात्क गरिमा आ जाती है जिससे उनकी गिनती दुनिया के महानतम सिद्धों में होती है। आकार के ज्ञान भी है तो ज्ञान भी, उसमें भी स्व–पर का संबंध मौजूद है। उसका भी अंत होकर वैयक्तिक सिद्धि की स्थिति उत्पन्न होनी चाहिए। ज्ञान कामना की स्थिति का सूचक है, वह प्रत्यूष के सामना है जो रहस्यमय संयो के सूर्योदय की घोषणा करता है। यदि बुद्धि चरम अर्थ में सत्ता को मापने का साहस करती है तो इससे तो केवल उसकी क्षमता की सीमाओं का ही हास्यास्पद उद्घाटन होगा। 'एक बार एक नमक की गुड़िया समुद्र को नापने गई पर वह तो जल के स्पर्श–मात्रा से ही पिघल गई।

हिन्दू धर्म के सभी रूपों का अनुीाव प्राप्त करने के बाद उन्होंने के बाद उन्होंने 'अपना जाल और दूर तक फैलना शुरू किया सबसे पहले वे इस्लाम की ओर मुड़े। यद्यपि यह इस्लामी दौर बहुत अल्पकालीन था, फिर भी यह स्पष्ट है कि रामकृष्ण परमहंस ने सूफी चिन्तन के वातावरण को पूरी तरह आत्मसात कर लिया था। उनके बहुत–से रूपक 'अल–गजलाली और जलालुद्दी रूमी' की याद दिलाते हैं। कुछ वर्षों के बाद वे इसाई धर्म की ओर आकर्षित हुए। बाइबिल उन्हें शंभुचरण मालिक तथा अन्य प्रमुख ईसाइयों ने पढ़कर सुनाईं। उन्हें जीसस के दर्शन होने लगे और मैडोना तथा शिशु जीसस के एक चित्रा को देखकर रहस्यवादी विह्वलता से आक्रांत हो गयै। परवर्ती वर्षो में रामकृष्ण प्रयः ईसा के बारे में कहा करते थे कि 'वे एक महान योगी थे जिन्होंने मानवता की भलाई के लिए अपने हृदय का रक्त उँड़ेला। मात्राा बौद्ध धर्म ही ऐसा महान संस्थापरक धर्म था जिससे रामकृष्ण परमहंस का घष्ठि सक्रिय संपर्क नहीं हुआ। पर फिर भी उनपर बौद्ध प्रभाव नगण्य नहीं था, विशेषकर विवेकानंद के साथ घनिष्ठ सहयोग होने के ाबद जो अक्सर उनसे बुद्ध की चर्चा किया करते थे। लगता है कि ऐसे विषयों में अपनी विलक्षण अंतर्दृष्टि से रामकृष्ण परमहंस शीघ्र ही यह समझ गये थे कि अपने उच्चत्म स्तर पर बौद्ध धर्म और वेदांत मिल जाते हैं। स्मरण रहे कि भारत के अन्य भागों की भाँति बंगाल में बौद्ध धर्म की परम्परा पूरी तरह कभी लुप्त नहीं हुई। बंगाल की लोकवार्ताओं और तंत्राा में बहुत–सा बौद्धधर्म जीवित रहा। रामकृष्ण की सहजवृत्ति ने अब उन्हें सामाजिक यथार्थ की ओर ध्यानदेने को प्रेरित किया। उन्होंने समकालीन सुधार आंदोलनों को समझने का प्रयत्न किया। अस्पताल–निर्माताओं और स्कूल–संस्थापकों के बारे में उनके उल्लेख प्रायः व्यंग्यपूर्ण हुआ करते थे। उन्होंने दूर–दूर तक भ्रमण किया और अपनी यात्राओं से समस्त मानव–जाति के अनुभव के साथ तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास किया। 'इसके बहुत से चमत्कारी उदाहरणों का उल्लेख उनकी मथुरा, बनारस तथा अन्य तीर्थ–स्थानों की यात्राा के सिलसिले में हुआ है। जहाँ भी वे जाते वहाँ दरिद्रता और अभाव को देखकर बहुत होते थे।

निष्कर्ष

सन् 1855 में दक्षिणेश्वर में जगदंबा की प्राण प्रतिश्ठा हुई थी। उसी समय गदाधर ने पुजारी का पद ग्रहण किया था अतः सन् 1855 से 1866 तक का बारह वर्ष का समय ही उनकी साधना का काल था, ये बारह वर्ष उनकी साधना काल के रूप में निर्दिष्ट है किन्तु इसके बाद तीर्थयात्राा के दौरान कुछ दिनों तक

व्यस्त रहे ओर लौटने के पश्चात् पुनः साधना में संलग्न हुए। यही बारह वर्ष गदाधर के जीवन का महत्वपूर्ण काल था। इसे मोटे तौर पर तीन भागों में बाँटा जा सकता है। पहला 1855 से 1858 तक के वर्षो का हैं इस अवधि में जो मुख्य घटनाएँ हुई, उसकी चर्चा की जा चुकी है। दूसरा काल 1858 से 1862 तक का हैं इस काल में उन्होंने भेरवी ब्राह्मणी के निर्देशन में गोकुल व्रत से आरंभ करके चौसठ तलों में वर्णित सभी मुख्य साधनाओं का अनुष्ठाना किया था। तीसरा काल 1862 से 1866 तक का हैं इसी काल के अंतिम भाग में परमहंस तोतापुरी से संन्यास दिला ली ओर अंत में गोविन्द राय से इस्लाम धर्म का उपदेश लेकर साधना की थी। प्रथम चार वर्षों की अवधि में उन्होने आध्यात्मिक विषय में बाह्य सहायता के रूप में केवल के ना राम भट्ट से शक्ति मंत्रा की दीक्षा ली। रामकृष्ण की साधना के काल वे जीवन पर जितना विचार किया जाए उतना ही स्पष्ट दिखायी देता है कि काली मंदिर के जन साधारण की दृष्टि में वे उस समय पागल जैसे प्रतीत होने पर भी निश्चय ही यह उन्माद मस्तिष्का के विकार या किसी रोग के कारण उत्पन्न नहीं, यदि दिव्योन्माद था तो यह उनके आध्यात्मिक जगत के लिए अंतः करण में उत्पन्न होने वाली प्रचंड व्याकुलता थी। इसी आकलता के प्रबल वेग से वे उस समय अपने आप को संभाल नहीं सकते थे तथा कभी उन्मत के समान वर्ताव कर बैठते थे। अजीब शक्ति के दर्शन के लिए उनके हृदय मे निरंतर प्रचंड ज्वाला उठा करती थी, उसके कारण वे साधारण लोगों की गृह सांसारिक वार्तालाप में भाग नहीं ले पाते थे। बस इसी से उन्हें लोग उन्मादग्रस्त कहा करते थे सांसारिक लोगों की भी तो कभी–कभी ऐसी ही अवस्था होती हैं यदि किसी बात के लिए हमारी व्याकुलता अत्यधिक बढ़ जाए और हमारी सहन शक्ति को मर्यादा के बाहर चले जाय जो हमारा भी आचरण बदल जाता है। 'तब हकम भीतर और बाहर दूसरा भाव रखकर संसार में सबके साथ मिल कर चल सकते है।' हमारा स्वभाव दूसरा भाव रखकर संसार के सबके साथ मिलकर नहीं चल सकता। हमारा स्वभाव बदल जाता हैं इस पर यदि कोई यह कहे कि सहन शक्ति की सीमा भी तो सब में एक सी नहीं होती। कोई थोड़े ही सुख–दुःख में बिल्कुल अंशात हो उठता है तो कोई बड़े दुःख में भी सदा पर्वत के समान अचल रहता है। अतः रामकृष्ण को सहन शक्ति कितनी थी, इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि उनके जीवन मे अन्य घटनाओं का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है।

संदर्भ सूची

- *'रामकृष्ण परमहंस : जीवन और उपदेश, स्वामी अपूर्वानन्द, पृष्ठ 481*
- *वही, पृष्ठ 629*
- *वही, पृष्ठ 233*
- *वही, पृष्ठ 340*
- *'भारत के संतः रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द, पृष्ठ 192*
- *'श्री रामकृष्ण की जीवनी', शारदानन्द, पृष्ठ 87*
- *'भारतीय सामाजिक चिन्तन', विनोद घोरपड़े, पृष्ठ 241*
- *'गॉस्पेल और श्री रामकृष्ण', ऐल्डूस हक्सले, पृष्ठ 292*
- *'लाइफ ऑफ रामकृष्ण', रोमा रोला, पृष्ठ 10, पृष्ठ 452, पृष्ठ 336*
- *'सेलेक्टेड राइटिंग', विवेकानन्द, पृष्ठ 361*
- *'गॉस्पेल और श्री रामकृष्ण', ऐल्डूस हक्सले, पृष्ठ 342, पृष्ठ 452,*
- *'श्री कृष्ण लीलामृत', रामचंन्द्र परमंपदे, पृष्ठ 8*
- *'रामकृष्ण', क्रिस्टकेपटर, पृष्ठ 25*
- *'श्री रामकृष्ण', रामचन्द्र परामंपदे, पृष्ठ 8*
- *'रामकृष्ण : हिज लाइफ एंड सपिंगस', मैक्समूलर, पृष्ठ 30*
- *'रामकृष्ण एंड हिज लाईफ', कैक्समूलर, पृष्ठ 3, पृष्ठ 37, पृष्ठ 87, पृष्ठ 107,पृष्ठ 106*